कामायनी को बँधे–बँधाये प्रतिमानों के स्थान पर उन्मुक्त दृष्टि से परखा और समझा जाने लगा। आचार्य शुक्ल के कामायनी सम्बन्धी कुछ संकेतिक निष्कर्ष तो इतने महत्वपूर्ण और बुनियादी मुद्दों से जुड़े थे कि उनका उन्मुक्त विवेचन–विश्लेषण शास्त्रीय आधारों पर सम्भव नहीं था और यह कार्य पुनर्मूल्यांकन के दौर में जाकर पूर्ण हुआ। इस प्रकार हिन्दी–समीक्षा के विकास क्रम में समानान्तर कामायनी की आलोचना प्रक्रिया में आधुनिकता के संक्रमण से उन्मुक्तता आती गयी और रचना पर शास्त्रीय का पकड़ ढीली हुई। आरम्भिक समीक्षकों का वैचारिक गीलापन शास्त्रीयता का क्लिष्टता और रूक्षता में समाहित होकर खत्म हो गया था। आगे चलकर समाजशास्त्रीय और मार्क्सवादी पूर्वाग्रह के गुंजलक में कामायनी का समीक्षा प्रक्रिया थोड़े समय के लिए फिर बन्द हो जाती है। लेकिन इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में आकर वह अपनी मुक्ति भी तलाशती है। रचना और आलोचना का इस मुक्ति को सम्भव बनाने वाले आलोचकों में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० इन्दुनाथ भवान, डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव, डॉ० नन्द किशोर नवल, डॉ० दीनानाथ सिंह और डॉ० रमेश कुन्तल मेघ का योगदान उल्लेखनीय हैं जिन्होंने इसे सृजन के स्तर पर संभव बनाया।

के रूप में भी व्याख्या की है। पारम्परिक दृष्टि से अलग हट कर मार्क्सवादी और समाज शास्त्र की केन्द्र में रख कर चलने वाले समीक्षकों ने नई वैचारिक दृष्टि का तो परिचय दिया पर इस मात्र पूँजीवादी विकास को प्रतिबिम्बित करने वाले महामात्य के रूप में सीमित कर अपने सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता और हठधर्मिता का विशेष रूप उजागर किया। आधुनिक आलोचनों ने सृजन प्रक्रिया के माध्यम से इसमें संरचनात्मक वैशिष्टय व कलात्मक सफलता का एक सीमा तक रेखांकित किया है। इस प्रकार कामायनी की पाठकीय और आलोचनात्मक प्रतिक्रिया अत्यन्त व्यापक तीव्र और विविध है। महाकाव्य, रूपक, चरित्र–चित्रण, रसवाद, आनन्दवाद, इतिहास, दर्शन, मनोविज्ञान, काव्य–शास्त्र, मिथक शास्त्रा, मार्क्सवाद, समाजशास्त्र, सौन्दर्य शास्त्र, अस्तित्ववादन बिम्बविधान तथा भाषिक संरचना आदि का आधार बनाकर प्रत्येक समीक्षक ने अपनी दृष्टि से कामायनी के अर्थ का पेंच–दर–पेंच खोलने का उपक्रम किया है।

जैसे–जैसे हिन्दी समीक्षा दृष्टि प्रौढ़ और आधुनिक होती गयी उसी के समानान्तर कामायनी की आलोचना प्रक्रिया में गुणात्मक बदलाव आता गया। कामायनी की अर्थगत संश्लिष्टता तथा उसमें तनाव युक्त विधान की व्याख्या आलोचकों के लिए प्रारम्भ से ही दुरूह कार्य रहा है। कामायनी की प्रारम्भिक समीक्षकों में इसके काव्यात्मक वैभव तथा विशिष्टता का विवेचन किया गया है जो प्रशंसात्मक अधिक है। मानवीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय तथा समसामयिक सन्दर्भो से युक्त इसमें संश्लिष्ट कथ्य का आचार्य शुक्ल ने जो सपाट विवेचना किया है वह यद्यपि उसकी संभावनाओं की ओर सूत्रवत संकेत करता था, फिर भी कृति की संश्लिष्टता का आगे के आलोचक समग्रता में नहीं पड़ सके और उन्होंने अपने विवेचन को शास्त्रों में बाँध कर एक रेखीय बना डाला। इसमें कोई शक नहीं कि पाश्चात्य आलोचनाशास्त्रा के सम्पर्क और टकराहट से हिन्दी–समीक्षा दृष्टि निरन्तर विकासशील बनी रही। उसने अपनी सीमाओं और पूर्वाग्रहों को पहचान कर उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया। हिन्दी समीक्षा में नवीन दृष्टियों के समावेश साथ–साथ

विवादों का अपना एक लम्बा इतिहास है। इसमें प्रकाशन काल से लेकर आज तक हर महत्वपूर्ण समीक्षकों ने इसकी रचना संवेदना से गुजरने और अर्थ प्रक्रिया का अपनी–अपनी दृष्टि से खोलने का प्रयत्न किया है। इस आलोचना प्रक्रिया का केन्द्र में न रखकर पारम्परिक काव्य–शास्त्रीय मानदण्डों या इतर प्रतिमानों के आधार पर विश्लेषित किया है। आरम्भिक काल से कामायनी पर छिड़े आलोचनात्मक विवादों और बहसों के मूल में प्रगतिशील प्रवृत्तियों का उदय और विकास रहा है। शास्त्रीय आलोचकों की मानसिकता तथा अनुदान दृष्टि के पीछे कामायनीकार का जीवन के रुढ़िवादी जड़ रूप का सक्रिय विरोध करना रहा है। समकालीनों की उपेक्षा तथा उदासीनता ने उसपर अस्पष्टता, दुरूहता, भाषा की अस्त–व्यस्तता आलोचना अत्यल्प और इस प्रकार की है कि उससे प्रसाद की महान प्रतिभा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

कामायनी चुनौती के रूप में आज भी विद्वानों और सामान्य पाठकों के सम्मुख जड़ी है। यद्यपि विविध पद्धतियों और शास्त्रों के सहारे उन्होंने इसमें अर्थ प्रक्रिया से टकराने और समझने का प्रयास किया है फिर भी कुछ अनजान और शेष रह जाता है। वस्ततुतः आलोचकों ने शास्त्रीयता और पारिभाषिक शब्दावली के जाल में स्वयं उलझ कर कामायनी के अर्थ का प्रशस्त करने के बजाये उसे उलझा दिया है जिससे सामान्य पाठक दिग्भ्रमित हो जाता है और कामायनी की पहचान धुँधला जाती है। 'आमुख' में मनु श्रद्धा का ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में कवि द्वारा दिये गये संकेत से कुछ आलोचक इसे ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में विवेचित कर इसकी असफलता की चर्चा करते हैं। 'साकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। 'आमुख' ने इस वाक्यांश का आधार बना कर कतिपय विद्वानों ने इसके रूपकत्व को सिद्ध करने का अथक प्रयास किया है। मनु श्रद्धा का कथा को प्रस्तुत तथा मानवीय–संस्कृति के विकास को अप्रस्तुत एह पूरे काव्य का विवेचित करने की प्रवृत्ति इसी दृष्टि का परिणाम है। कामायनी में आई दार्शनिक शब्दावली को लक्ष्य कर विद्वानों ने इसकी दर्शन प्रधान रचना

समझने में सहायक है। कामायनी अपनी उच्च कोटि का साहित्यिकता से जहाँ एक ओर अभिभूत करती हैं वही यह अत्यन्त विवादग्रस्त कृति है। इसका महाकाव्य, रूपकत्व, भाषिक संरचना, जीवन–दर्शन, अर्थ विवादों के केन्द्र रहे हैं। विचार–धारा को मनु, श्रद्धा और इड़ा के व्यक्तित्व के माध्यम से सृजनात्मक रूप दिया है। इस मौलिक विचारों के अनुरूप ही काव्य का विधान–पारम्परिक महाकाव्यों के शिल्प से अलग है। 'यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है' आमुख की इस पंक्ति से कामायनी के विधान की विशिष्टता का बड़ी सरलता से समझा जा सकता है। कामायनी का रचना विधान चिन्ता और आनन्द सर्ग के मध्य विकसित किया गया है। कामायनी के कर्म और ईर्ष्या सर्ग में मनु श्रद्धा के वाद–विवाद के मध्य मानवीय–संस्कृति की शाश्वत समस्या को उठाया गया है। इन सर्गो में यद्यपि बिम्बात्मक वैभव नहीं लेकिन जिन प्रश्नों का कवि ने उभरा है वह चिरन्तन मानवीय समस्याओं से जुड़े हुए हैं और इस प्रकार कामायनी के रचना विधान में इन दो सर्गो का महत्वपूर्ण स्थान है। ईर्ष्या सर्ग में श्रद्धा के रूप में भावी जननी के जिस उल्लास तथा अनागत शिशु के लिए उसकी – 'मेरी पीड़ा पर छिड़केगा जो कुसुम धूलि मकरंद घोल, मेरी आँखों का सब पानी तब बन जायेगा अमृत स्निग्ध' एवं अन्य ऐसी ही जिन मधुर कल्पनाओं का अंकित किया है वे नितांत मौलिक हैं और कामायनी का यह प्रसंग विश्व साहित्य में अतुलनीय है। अंतिम तीन सर्गो में कवि ने समता–ममता युक्त समतावादी समाज की परिकल्पना को विशिष्ट शब्दावली में मूर्त किया है। प्रसाद ने कामायनी में जीवन को उसकी सम्पूर्णता में देखने एवं अपनाने का आग्रह किया तथा इस विश्व में रहकर ही आनन्द की अनुभूति करने का अत्यन्त व्यावहारिक दर्शन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कामायनी का अर्थ प्रक्रिया संश्लिष्ट और बहुस्तरीय है। अपनी इस संश्लिष्टता एवं अर्थ सघनता के कारण कामायनी में अब भी कुछ शेष है, वह पूरी तरह से खुली नहीं है।

वस्तुतः हिन्दी–साहित्य के अद्वितीय कृति कामायनी पर हुए विचारों और

'कामायनी' प्रसाद जी की प्रौढ़तम रचना है और हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। जहाँ तक उसके काव्यत्व का प्रश्न है वह अत्यन्त निखरा हुआ प्रतीत होता है जितना भाव गाम्भीर्य और कल्पना की उड़ान प्रसाद जी ने अपनी 'कामायनी' में प्रस्तुत की है, इतनी किसी अन्य कवि ने नहीं की। इस ग्रन्थ में प्रसाद जी के प्रारम्भिक काव्यों जैसी शिथिलता नहीं वरन् एक अपूर्व मधुरिमा और भावाभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता है। इसमें प्रसाद जी का कवि अत्यन्त प्रौढ़ और मार्मिक चित्र उपस्थित करने में सफल हुआ है। काव्यात्मक और बौद्धिक दोनों ही दृष्टियों से 'कामायनी' बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। मानव–जीवन की विवेचना करने वाले इस काव्य में कहीं भी नीरसता एवं शुष्कता नहीं। इसमें एक ओर यदि सौंदर्य के दर्शनीय स्वरूप की भरमार है तो दूसरी ओर जीवन के गवेषणात्मक तथ्यों का गाम्भीर्य और बौद्धिक विचारधाराओं का सागर भी उफनता मिलता है। डॉ० शिवकुमार मिश्र का कहना है ''काव्यात्मक सौन्दर्य द्वारा मानव जीवन का इतना गहना विश्लेषण अन्यत्र असम्भव है।

जीवन के प्रति जागरूकता, यौवन का मदमस्त उल्लास तथा तद्गत अतीत के प्रेम की अमिट छाप ने ही महाकवि प्रसाद से हिन्दी–साहित्य को 'कामायनी' जैसा अमर काव्य प्रदान कराया। इस महाकाव्य में गहरा पैठने पर हमको आशा–निराशा, सुख–दुःख तथा प्रकृति के अत्यन्त रोमान्चकारी एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण देखने को मिलते हैं। यह महाकाव्य प्रसाद जी का अन्तिम किन्तु सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें यदि एक ओर प्रलयकालीन सागर की गर्जनाएँ निहित हैं तो दूसरी ओर ऊषा की अरुणिमा का कोमल